CHETANA
International Journal of Education (CIJE)
Peer Reviewed/Refereed Journal
ISSN : 2455-8279 (E)/2231-3613 (P)
Impact Factor
SJIF 2025-8.445

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

शिक्षा, राजनीति और आलोचना का संकट: कार्टून विवाद के बहाने आलोचनात्मक चिन्तन पर अंकुश

अश्विनी कुमार "सुकरात"
सहायक प्रोफेसर (एड-हॉक)
महर्षि वाल्मीकि कॉलेज ऑफ़ एजुकेशन दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
Email-ashwini.edu21@gmail.com, Mobile-9643273515

First draft received: 05.11.2025, Reviewed: 09.11.2025
Final proof received: 09.11.2025, Accepted: 20.12.2025

सारांश

यह शोध आलेख 2012 में घटित एनसीईआरटी कार्टून विवाद को आधार बनाकर भारतीय शैक्षणिक प्रणाली, आलोचनात्मक चिंतन, और विचारधारात्मक असहिष्णुता के संकट की गहराई से पड़ताल करता है। आलेख का केन्द्रीय तर्क यह है कि यह विवाद एक कार्टून से कहीं अधिक एक विचारधारा की असहिष्णु प्रतिक्रिया का प्रतीक बन गया, जिसने न केवल शैक्षणिक सामग्री की स्वायत्तता को प्रभावित किया, बल्कि आलोचना पर आधारित लोकतांत्रिक शिक्षा के उद्देश्यों को भी चुनौती दी। इस संदर्भ में लेख यह विश्लेषण करता है कि कैसे एक ऐतिहासिक व्यंग्यचित्र—जो डॉ. भीमराव आम्बेडकर और जवाहरलाल नेहरू को संविधान निर्माण की प्रक्रिया में दर्शाता है—एक राजनीतिक विमर्श का केंद्र बन गया और उसे दलित अस्मिता के अपमान के रूप में प्रचारित किया गया। लेख में यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या भावनात्मक राजनीति के उभार ने आलोचनात्मक शिक्षा की संभावना को सीमित कर दिया है, और यह भी कि आज की शिक्षा प्रणाली में विचारों की बहुलता एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता कितनी सुरक्षित है। आलेख का उद्देश्य शिक्षाविदों, नीति निर्माताओं और सामाजिक विचारकों के लिए यह चिंतन प्रस्तुत करना है कि क्या हम एक ऐसे समाज की ओर बढ़ रहे हैं जो प्रश्नों से डरता है, आलोचना से घबराता है और बहस को टालने की प्रवृत्ति को संस्थागत बना चुका है।

मुख्य शब्द: *Critical Thinking (आलोचनात्मक चिंतन), Ideological Intolerance (विचारधारात्मक असहिष्णुता), Textbook Censorship (पाठ्यपुस्तक पर सेंसरशिप), Emotive Politics (भावनात्मक राजनीति), Dalit Representation (दलित प्रतिनिधित्व), NCERT Curriculum (एनसीईआरटी पाठ्यचर्या), Symbolic Politics (प्रतीकात्मक राजनीति), Freedom of Expression (अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता), Political Interference in Education (शिक्षा में राजनीतिक हस्तक्षेप), Pluralism in Education (शिक्षा में बहुलतावाद) आदि.*

घोषणा (Declaration)

यह शोध लेख लेखक द्वारा 2011 में फरीदाबाद (हरियाणा) से प्रकाशित पाक्षिक पत्रिका मजदूर मोर्चा में प्रकाशित समाचार-आलेख "कार्टून पर हंगामा: भारतीय राजनीति का दिवालियापन" (2012) का एक विकसित शैक्षणिक विस्तार (academic extension) है। मूल लेख को आधार बनाते हुए इसमें समकालीन दृष्टिकोण, विधायी प्रतिक्रियाएँ, पाठ्यक्रम नीतियाँ, और आलोचनात्मक शिक्षा पर शोधपरक विमर्श जोड़ा गया है। लेख का उद्देश्य विशुद्ध शैक्षणिक है और यह किसी प्रकार की राजनैतिक/व्यक्तिगत पक्षधरता को नहीं दर्शाता।

परिचय (Introduction)

भारतीय शिक्षा प्रणाली में आलोचनात्मक चिंतन (critical thinking) और विचारों की बहुलता को स्थान देने की बात की जाती है, लेकिन समय-समय पर कुछ प्रकरण यह उजागर करते हैं कि जैसे ही शैक्षणिक सामग्री सत्ताधारी या प्रभावशाली वर्गों की मान्यताओं पर प्रश्नचिह्न लगाती है, उस पर तीव्र विरोध शुरू हो जाता है। ऐसा ही एक दृष्टांत 2012 का एनसीईआरटी पाठ्यपुस्तक कार्टून विवाद है, जिसने शिक्षा में विचारधारात्मक असहिष्णुता (ideological intolerance) के संकट को उजागर किया। यह विवाद भारतीय संविधान के निर्माण काल पर बने एक ऐतिहासिक कार्टून से जुड़ा था, जिसमें डॉ॰ भीमराव आम्बेडकर और जवाहरलाल नेहरू को एक घोंघे (स्नेल) पर सवार दर्शाया गया था। यह कार्टून 1949 में प्रसिद्ध कार्टूनिस्ट शंकर पिल्लई द्वारा बनाया गया था।

एक खास परीपेक्ष में वह कार्टून बना था, दशकों तक वह कार्टून अविवादित रहा और समय के साथ इतिहास के गर्त में चला गया। 2006 में एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित ग्यारहवीं कक्षा की

राजनीतिक विज्ञान की पाठ्यपुस्तक में संविधान बनने की प्रक्रिया के संदर्भ को समझाने के लिए शामिल किया गया। 2006 से 2012 तक यह अविवादित रहा। इसके पुनः प्रकाशन के बाद मई 2012 में अचानक भारी राजनीतिक हंगामा खड़ा हो गया। संसद के दोनों सदनों में इस कार्टून को दलित आइकन आम्बेडकर का अपमान बताते हुए शोरगुल हुआ और जिस कारण संसद की कार्यवाही स्थगित करनी पड़ी।

इस कार्टून को लेकर उठे विवाद में राजनीतिक प्रतिक्रिया तीव्र, भावनात्मक और लगभग सर्वसम्मत थी — दलित राजनीति से जुड़े नेताओं से लेकर सत्तारूढ़ दल तक ने कार्टून हटाने और दोषियों पर कार्रवाई की मांग की। तत्कालीन मानव संसाधन विकास मंत्री कपिल सिब्बल को माफ़ी मांगनी पड़ी, एनसीईआरटी को कार्टून हटाना पड़ा और पाठ्यपुस्तक निर्माण से जुड़े शिक्षाविदों को सार्वजनिक आलोचना झेलनी पड़ी। कुछ अराजक तत्वों द्वारा प्रो. सुहास पलशीकर के कार्यालय पर हमला भी किया गया।

यह प्रसंग विशुद्ध शैक्षणिक नहीं रह गया था। यह एक ऐसे समाज में घटित हुआ जहाँ व्यंग्य के लिए भी स्थान सिकुड़ रहा था। उदाहरणतः पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने एक प्रोफेसर को केवल एक व्यंग्यात्मक कार्टून साझा करने के लिए गिरफ़्तार करवा दिया था। जबकि शंकर पिल्लई द्वारा नेहरू पर बनाए गए तीखे व्यंग्य को स्वयं नेहरू ने सराहा था और उस कार्टून की हस्ताक्षरित प्रति तक माँगी थी।

यह विरोधाभास केवल व्यक्तित्वों का नहीं, बल्कि एक विचारधारात्मक और संवैधानिक दुविधा का प्रतीक है – कि क्या शिक्षा को आलोचना से दूर रखने का अर्थ है लोकतंत्र को बौद्धिक रूप से खोखला करना? क्या शैक्षणिक सामग्री केवल भावनात्मक छवियों से बचती हुई, निष्क्रिय निष्कर्षों तक सिमटनी चाहिए? इस लेख में इन्हीं प्रश्नों को केंद्र में रखते हुए कार्टून विवाद को एक लेंस के रूप में प्रयोग कर शिक्षा और राजनीति के गहरे अंतर्संबंधों का विश्लेषण किया गया है।

यह लेख एक ऐसे विमर्श को पुनर्जीवित करने का प्रयास है जो शिक्षा को सिर्फ़ 'विषयवस्तु' नहीं, बल्कि 'लोकतांत्रिक प्रक्रिया' का अंग मानता है। जहाँ छात्र केवल पाठ याद न करें, बल्कि प्रश्न करें, जहाँ नेता आलोचना को सम्मान से लें, और जहाँ पाठ्यक्रम सत्ता का उपकरण न होकर समझ का माध्यम बने।

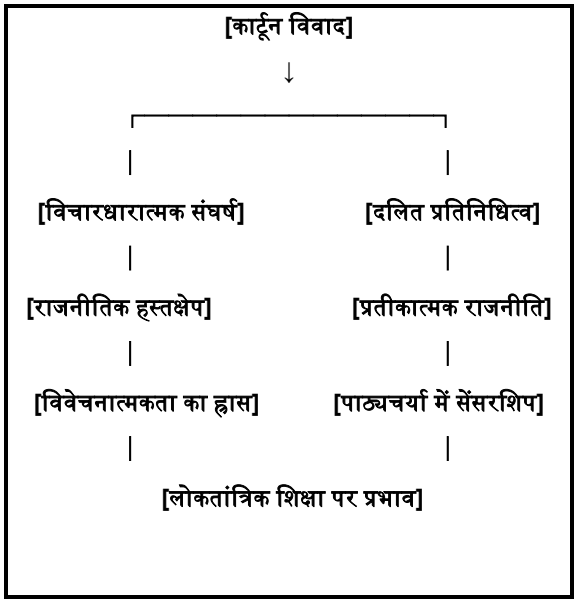

पृष्ठभूमि और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

पाठ्यपुस्तकों में कार्टून की ऐतिहासिक भूमिका

शिक्षा में कार्टून व व्यंग्यचित्रों का उपयोग कोई नई बात नहीं है। विश्व भर में शिक्षाशास्त्रियों ने कार्टूनों को पाठ सामग्री का हिस्सा इसलिए बनाया है ताकि जटिल राजनीतिक-सामाजिक विषयों पर छात्र रोचक ढंग से विचार कर सकें और आलोचनात्मक दृष्टिकोण विकसित हो। भारत में भी एनसीईआरटी सहित विभिन्न शिक्षा बोर्डों ने समय-समय पर पाठ्यपुस्तकों में राजनीतिक कार्टून, ताज़ा व्यंग्य और ऐतिहासिक चित्र शामिल किए हैं।

2005 में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (NCF) अपनाए जाने के बाद, एनसीईआरटी ने अपने सामाजिक विज्ञान के पाठ्यक्रमों में भारी बदलाव करते हुए ऐसे सैकड़ों कार्टून सम्मिलित किए जो राजनीति और समाज के विभिन्न पहलुओं पर तीखी टिप्पणी करते थे। इन कार्टूनों का उद्देश्य छात्रों में जनतांत्रिक आलोचनात्मक चेतना विकसित करना था। उदाहरणस्वरूप, राजनीति विज्ञान की किताबों में शंकर, आर.के. लक्ष्मण, इत्यादि विख्यात कार्टूनिस्टों के कई कार्टून सम्मिलित किए गए जो भारतीय लोकतंत्र की विडंबनाओं और चुनौतियों को उजागर करते थे।

इतिहास देखें तो स्वतंत्र भारत की राजनीतिक चेतना में कार्टून एक सशक्त माध्यम रहे हैं। शंकर पिल्लई (के. शंकर) जैसे कार्टूनिस्टों ने अपने रेखाचित्रों से शासन और समाज की कमजोरियों पर व्यंग्य किया। शंकर पिल्लई ने 'शंकर वीकली' के माध्यम से स्वतंत्र भारत में व्यंग्य पत्रकारिता को स्थापित किया। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में लगभग सभी प्रमुख नेताओं पर कार्टून बनाए। पंडित नेहरू उनके विशेष प्रशंसक थे। उन्होंने कभी शंकर द्वारा स्वयं पर बनाए गए तीखे कार्टून पर भी न केवल आपत्ति नहीं जताई, बल्कि उसकी हस्ताक्षरित प्रति माँग कर फ्रेम करवाया। यह परिपक्वता आज की राजनीति में दुर्लभ हो गई है। उदाहरणतः पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने एक प्रोफेसर को केवल कार्टून साझा करने के लिए गिरफ़्तार करवा दिया। इस प्रकार व्यंग्य की स्वीकार्यता का स्तर समय के साथ संकुचित हुआ है।

3.2 एनसीईआरटी, पाठ्यचर्या और यथार्थ

2005 की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा लागू होने के बाद एनसीईआरटी ने इतिहास, राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र जैसे विषयों की पुस्तकों को प्रगतिशील दृष्टिकोण से दोबारा लिखवाया। इन पुस्तकों में वास्तविक घटनाओं, जीवंत उदाहरणों और कार्टूनों/तस्वीरों के माध्यम से विषय वस्तु को प्रस्तुत किया गया। उद्देश्य यह था कि शिक्षा वास्तविक जीवन से जुड़ी लगे और छात्र संदर्भ को आलोचनात्मक दृष्टि से समझें।

एनसीईआरटी की इन नई पुस्तकों ने कई संवेदनशील मुद्दों को भी ईमानदारी से छुआ – जैसे आपातकाल, सांप्रदायिक दंगे, जाति-व्यवस्था, क्षेत्रीय आंदोलन आदि – जिन पर पहले पाठ्यपुस्तकों में बहुत सतही या पक्षपाती जानकारी मिलती थी। नई पाठ्यपुस्तकों ने ऐसी घटनाओं पर बहस के प्रश्न उठाए और तस्वीरों/कार्टूनों के जरिये छात्रों को विश्लेषण के लिए प्रेरित किया।

राजनीति विज्ञान की कक्षा 11 की पुस्तक "भारत का संविधान : सिद्धांत और व्यवहार" में आम्बेडकर को पहली बार नेहरू और गांधी के समतुल्य प्रस्तुत किया गया। इसमें संविधान निर्माण प्रक्रिया में दलित और कम्युनिस्ट नेताओं के मतभेदों को भी रेखांकित किया गया, जो पहले पाठ्यक्रमों में नहीं होता था।

इस कार्टून का चयन कोई आकस्मिक निर्णय नहीं था, बल्कि यह संविधान निर्माण में आम्बेडकर की केंद्रीय भूमिका को उजागर करता था। पुस्तक में स्पष्ट किया गया कि संविधान निर्माण भले ही

धीमी प्रक्रिया रही हो, पर वह विभिन्न विचारधाराओं के बीच संवाद और समन्वय का परिणाम था – जिसमें आम्बेडकर की भूमिका निर्णायक थी। यही कारण था कि कार्टून में आम्बेडकर को संविधान रूपी घोंघा पर सवार दिखाया गया। यह सम्मान का प्रतीक था, न कि अपमान का। कार्टून नेहरू और आम्बेडकर के मतभेद को भी रेखांकित करता है, पर किसी प्रकार की जातिगत या अपमानजनक मंशा से नहीं।

वास्तव में, यह पाठ्यपुस्तक केवल आम्बेडकर ही नहीं, बल्कि सभी नेताओं को व्यंग्य के समान स्तर पर प्रस्तुत करती है। नवीं एवं दसवीं की लोकतांत्रिक राजनीति की पुस्तकों में अटल बिहारी वाजपेयी, इंदिरा गांधी, वल्लभ भाई पटेल, राम मनोहर लोहिया, इत्यादि नेताओं पर भी कार्टून हैं। फिर अकेले आम्बेडकर पर बने कार्टून को अपमानजनक मानना बौद्धिक असंतुलन का प्रतीक है।

महत्वपूर्ण यह है कि इस पाठ्यपुस्तक के लेखक मंशा के स्तर पर आम्बेडकर का स्थान कम नहीं करना चाहते थे, बल्कि उन्होंने उन्हें समानांतर और आलोचनात्मक विमर्श में लाने का प्रयास किया। पर दुर्भाग्यवश, यही आलोचनात्मक विमर्श बाद में राजनीतिक भावनाओं का शिकार बन गया।

विवाद का विमर्शात्मक विश्लेषण

अंबेडकर-नेहरू कार्टून और उसका व्याख्यायन

जिस कार्टून ने विवाद को जन्म दिया, उसमें डॉ॰ बी.आर. आम्बेडकर घोंघे (जिस पर "संविधान" लिखा है) की सवारी करते दिखते हैं और पंडित जवाहरलाल नेहरू पीछे से हाथ में चाबुक उठाए खड़े हैं। यह कार्टून 1949 में कार्टूनिस्ट शंकर द्वारा संविधान निर्माण की धीमी प्रगति पर एक चुटीली टिप्पणी के रूप में बनाया गया था। कार्टून में आम्बेडकर के पास चाबुक है और वह घोंघे पर अग्रिम स्थिति में हैं – जो स्पष्ट रूप से यह इंगित करता है कि संविधान निर्माण की बागडोर उनके हाथ में है।

शंकर भारत में कार्टून विधा के जनक माने जाते हैं। उन्होंने स्वतंत्रता आंदोलन के समय से सभी प्रमुख नेताओं पर कार्टून बनाए। पं. नेहरू स्वयं उनके प्रशंसक थे और व्यंग्यात्मक चित्रों को सहजता से लेते थे। उन्होंने स्वयं एक तीखे कार्टून की हस्ताक्षरित प्रति माँगकर उसे फ्रेम करवाया था।

विवादास्पद कार्टून दशकों तक बिना विवाद के रहा। ना तो संविधान सभा, ना ही आम्बेडकर या नेहरू, और ना ही उनके समकालीनों ने इस पर कोई आपत्ति जताई। यदि वाकई में कार्टून डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर का अपमान कर रहा होता, तो वे कभी भी इस मुद्दे पर खामोश ना रहते।

यह कार्टून मात्र यह दर्शा रहा था कि संविधान निर्माण प्रक्रिया धीमी थी और उसमें विचारधारात्मक मतभेद मौजूद थे। एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तक में इस कार्टून को संदर्भित करते हुए छात्रों को यही सवाल उठाने को कहा गया था कि संविधान बनने में इतनी देर क्यों लगी। यह आलोचनात्मक शिक्षा का हिस्सा था।

लेकिन 2012 में इस कार्टून को उसकी मूल व्याख्या से काटकर राजनीतिक रंग दे दिया गया। दलित राजनीति के कुछ नेताओं ने इसे आम्बेडकर का अपमान घोषित कर दिया और संसद में हंगामा शुरू हुआ। इसे कहा गया कि "नेहरू आम्बेडकर को कोड़े मार रहे हैं," जबकि यह चित्रण सच के बिल्कुल विपरीत था। न केवल यह चित्र रूपक (metaphor) था, बल्कि इसमें आम्बेडकर को आगे और सशक्त दिखाया गया था।

एनसीईआरटी द्वारा 11वीं कक्षा के पाठ्यक्रम के लिए प्रकाशित पुस्तक "भारत का संविधान: सिद्धांत एवं व्यवहार" में आम्बेडकर को नेहरू और गांधी के समतुल्य प्रस्तुत किया गया था। यह पहली बार था जब उन्हें संविधान निर्माता से आगे एक वैचारिक विमर्शकर्ता के रूप में दर्शाया गया था। परंतु इसी पुस्तक में सम्मिलित कार्टून पर विवाद खड़ा हो गया।

आलोचनात्मक चिंतन बनाम भावनात्मक राजनीति

शैक्षिक विमर्श पर भावनाओं का प्रभाव

2012 के कार्टून विवाद ने यह उजागर किया कि जब शैक्षिक विमर्श को भावनात्मक राजनीति नियंत्रित करने लगे, तो आलोचनात्मक शिक्षा का स्वरूप ही संकट में पड़ जाता है। कार्टून, जो एक शिक्षण उपकरण के रूप में इस्तेमाल हो रहा था, को राजनीतिक प्रतीक में बदल दिया गया और उस पर आधारित बहसें तथ्य और संदर्भ से कटकर केवल भावनात्मक आक्रोश में तब्दील हो गईं।

संसद में हुई बहसों में अधिकांश सांसदों ने मूल पाठ्यपुस्तक को पढ़े बिना ही अपनी राय दी। उनका तर्क यह था कि ऐसे कार्टून बच्चों की 'कोमल मानसिकता' को प्रभावित करेंगे और नेताओं की छवि को खराब करेंगे। जबकि वास्तविकता यह थी कि कार्टून के माध्यम से छात्रों को लोकतंत्र की जटिलताओं को समझने का अवसर दिया जा रहा था। एक सांसद का यह कथन कि "बच्चे नेताओं के चरित्र का मूल्यांकन करने लायक नहीं होते", यह दर्शाता है कि किस प्रकार शिक्षा को केवल जानकारी देने वाले माध्यम के रूप में सीमित किया जा रहा है, न कि सोच विकसित करने वाले मंच के रूप में।

प्रसंगवश, यह वही समाज है जहाँ 18 वर्ष की आयु में नागरिकों को मत देने का अधिकार प्राप्त है, लेकिन उन्हें नेताओं के चरित्र पर राय बनाने योग्य नहीं माना जा रहा। यह विरोधाभास दर्शाता है कि राजनीतिक वर्ग असल में बच्चों को परिपक्व नागरिक के रूप में नहीं, बल्कि आज्ञाकारी उपभोक्ता के रूप में देखना चाहता है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमा

शिक्षा में आलोचनात्मक विमर्श तब फलता-फूलता है जब विचारों की स्वतंत्रता को संरक्षित किया जाए। लेकिन इस विवाद ने अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की सीमाओं को लेकर गंभीर प्रश्न उठाए। सरकार और सांसदों ने यह तो स्वीकार किया कि "हम अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के पक्षधर हैं", लेकिन तुरन्त उसके बाद "लेकिन..." जोड़ते हुए कार्टून हटाने की मांग कर दी। यह "लेकिन" ही सबसे बड़ा खतरा बन जाता है, जब लोकतांत्रिक संस्थाएँ असहमति को प्रतिबंध के माध्यम से नियंत्रित करने लगती हैं।

पाठ्यपुस्तकों के मामले में, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ यह नहीं कि कुछ भी लिखा जाए, परन्तु यदि संदर्भ, उद्देश्य और साक्ष्य के साथ सामग्री दी जाए तो उसे बहस और संवाद के माध्यम से समझना चाहिए – ना कि सीधे निषेधात्मक कार्रवाई के माध्यम से।

विवेचनात्मकता (Criticality) का ह्रास

कार्टून विवाद का सबसे बड़ा नुकसान शिक्षा में विवेचनात्मकता के ह्रास के रूप में सामने आया। वह पाठ्यक्रम जो छात्रों को सोचने, प्रश्न करने, विश्लेषण करने और असहमति व्यक्त करने का साहस देता था – अब संशय और भय के माहौल में आ गया। लेखकों ने आत्म-सेंसरशिप (self-censorship) अपनानी शुरू की और शिक्षकों में भी यह भावना व्याप्त होने लगी कि संवेदनशील विषयों को पढ़ाने से विवाद खड़ा हो सकता है।

इसका परिणाम यह हुआ कि एनसीईआरटी जैसी स्वायत्त संस्थाओं की निर्णय क्षमता पर प्रश्न खड़े हुए और अकादमिक स्वतंत्रता पर दबाव बढ़ा। नई पीढ़ी को एक ऐसा पाठ्यक्रम मिलने लगा जिसमें रोचकता, आलोचना और संवाद की जगह स्थूल, निष्क्रिय और

रटंत ज्ञान ने ले ली। इससे स्पष्ट होता है कि जब शिक्षण संस्थाएँ राजनीतिक दबावों के अधीन होती हैं, तो शिक्षा का उद्देश्य केवल 'जानकारी देना' रह जाता है, 'समझ विकसित करना' नहीं।

विवेचनात्मकता का ह्रास केवल एक शैक्षणिक क्षति नहीं, बल्कि यह लोकतंत्र की दीर्घकालिक क्षति है। ऐसे नागरिक जो आलोचना से डरें, वे न तो बेहतर मतदाता बन सकते हैं, न ही जिम्मेदार नेतृत्व चुन सकते हैं। अतः यह विवाद न केवल एक कार्टून का, बल्कि उस सोच का संकट था जो शिक्षा को संवाद की जगह प्रचार का माध्यम बनाना चाहती है।

विवाद के बाद तत्कालीन शिक्षा सलाहकार प्रो. सुहास पलशीकर और योगेंद्र यादव को अपने पद से इस्तीफ़ा देना पड़ा। प्रो. पलशीकर के कार्यालय पर हमला भी किया गया – यह सब दर्शाता है कि भावनात्मक राजनीति ने आलोचनात्मक विमर्श को किस कदर दबा दिया था।

दलित राजनीति बनाम आलोचनात्मक शिक्षा

दलित अस्मिता की राजनीति में अपने नायकों के प्रति अपमान की किसी भी संभावना पर तीव्र प्रतिक्रिया होती है। यह ऐतिहासिक अन्याय के अनुभव और प्रतिनिधित्व की लड़ाई से उत्पन्न होती है। लेकिन इस मामले में समस्या यह रही कि यह कार्टून आम्बेडकर का उपहास नहीं, बल्कि उनके नेतृत्व की स्वीकृति का प्रतीक था। उनके पास चाबुक है, वह घोंघे पर सवार हैं, जबकि नेहरू पीछे हैं – यह दृश्य किसी भी दृष्टिकोण से अपमानजनक नहीं कहा जा सकता।

अतः इस विवाद में दलित अस्मिता की रक्षा के नाम पर आलोचनात्मक शिक्षा के उद्देश्यों पर आघात हुआ। कार्टून को पाठ्यपुस्तक से निकालना यह संकेत देता है कि भविष्य में कोई भी सामग्री यदि किसी भावना को आहत करे तो वह हटाई जा सकती है – चाहे उसका उद्देश्य कितना ही लोकतांत्रिक क्यों न हो। आलोचना की संस्कृति, जो दलित विमर्श के केंद्र में रही है, इस प्रकरण में प्रतिबंध की राजनीति में बदलती दिखी।

संसद में हुआ हस्तक्षेप और उसकी सीमाएँ

लोकतंत्र में संसद सर्वोच्च संस्था है, लेकिन क्या पाठ्यपुस्तकों की सामग्री पर संसद को निर्णय करना चाहिए? 2012 के विवाद में संसद ने बिना शैक्षणिक समीक्षा के, सीधे कार्टून हटाने का आदेश दिया। कपिल सिब्बल ने सदन में खेद व्यक्त किया और कार्टून हटाने का वादा किया। इसके बाद कई अन्य कार्टून भी हटाए गए। यह एक खतरनाक प्रवृत्ति थी – एक बार संसद ने यह संकेत दिया कि बहस या असहमति को शोर से दबाया जा सकता है, तब वह लोकतांत्रिक प्रक्रिया कमजोर होती है।

योगेंद्र यादव ने अपने कॉलम "Dangers of Deletion" में चेताया कि यदि यह प्रथा बनी, तो हर बार कोई भी असहज करने वाला विचार बहुमत के दबाव में हटा दिया जाएगा। पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा, संशोधन और पुनर्लेखन का एक स्वायत्त तंत्र होता है – जो इस मामले में निष्क्रिय कर दिया गया। इससे अकादमिक स्वायत्तता पर प्रश्नचिह्न खड़े हुए।

दलित विमर्श और शिक्षा का लोकतंत्रीकरण

दलित अस्मिता की ऐतिहासिक बहसें

दलित आंदोलन भारतीय सामाजिक-राजनीतिक विमर्श में उस चेतना का परिचायक रहा है जो विमर्श का लोकतंत्रीकरण (democratization of discourse) करना चाहता है। डॉ. भीमराव आम्बेडकर के नेतृत्व में इस आंदोलन ने वंचित समुदायों को न केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व की माँग करने का साहस दिया, बल्कि ज्ञान के समावेश में भी अपनी भागीदारी पर बल दिया।

लेकिन कार्टून विवाद के परिप्रेक्ष्य में यह सवाल उठता है कि क्या दलित विमर्श का यही स्वरूप बना रहना चाहिए? जब एनसीईआरटी जैसी संस्था ने आम्बेडकर को नेहरू और गांधी के समतुल्य स्थान देते हुए गहन आलोचनात्मक चर्चा का भाग बनाया, तब यही आलोचना उस वर्ग द्वारा खारिज कर दी गई जिसे इससे सबसे अधिक लाभ मिल सकता था।

कार्टून को हटाने की मांग इस ऐतिहासिक प्रवृत्ति का प्रतीक बन गई कि दलित अस्मिता अब आलोचना को स्वीकार करने में असहज हो रही है – भले वह आलोचना सम्मानजनक और विमर्शात्मक ही क्यों न हो। इससे दलित विमर्श में आंतरिक पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता महसूस होती है कि क्या वह विचार के स्तर पर आत्म-संवाद के लिए तैयार है?

प्रतिनिधित्व, प्रतीक और प्रतिरोध

दलित राजनीति में प्रतीकों का अत्यधिक महत्त्व है। आम्बेडकर, नीला झंडा, अशोक चक्र जैसे प्रतीक पहचान और प्रतिरोध दोनों के प्रतिनिधि बन गए हैं। लेकिन जब प्रतीक आलोचना से परे हो जाते हैं, तब वे केवल मूर्तियों में बदल जाते हैं – जीवंत बहस में भागीदार नहीं रह जाते।

इस विवाद ने यह दर्शाया कि आलोचना के साथ सह-अस्तित्व की जगह, प्रतिबंध की प्रवृत्ति प्रबल हो रही है। यह प्रवृत्ति अंततः दलित छात्रों को ही नुकसान पहुँचाएगी जो आलोचनात्मक शिक्षा से सबसे अधिक लाभान्वित हो सकते हैं। यदि शिक्षा में केवल महापुरुषों का महिमामंडन होगा और उनका कोई आलोचनात्मक विश्लेषण नहीं किया जाएगा, तो यह लोकतंत्र नहीं बल्कि स्मृति-पूजन बनकर रह जाएगा।

शैक्षिक संस्थानों में दलितों की आवाज़

यह विवाद एक और बिंदु उजागर करता है – शैक्षिक संस्थानों में दलित समुदाय की आवाज़ की सीमित उपस्थिति। एनसीईआरटी की पुस्तकों को तैयार करने वाली टीमों में दलित शिक्षकों या चिंतकों की संख्या कम रही है। संभव है, अगर अधिक समावेशी प्रतिनिधित्व होता, तो सामग्री पर पहले से ही अधिक संवाद हो पाता और ऐसा टकराव टाला जा सकता था।

यह जरूरी है कि पाठ्यक्रम निर्माण और शैक्षणिक विमर्श में दलित बुद्धिजीवियों की भागीदारी को बढ़ावा दिया जाए। इससे न केवल पाठ्यक्रम की विश्वसनीयता बढ़ेगी, बल्कि यह भी सुनिश्चित होगा कि दलित अस्मिता के विषयों को केवल बाहरी दृष्टिकोण से नहीं बल्कि अंदरूनी दृष्टिकोण से भी प्रस्तुत किया जा सके।

सारांशतः, दलित विमर्श को अब इस दिशा में बढ़ना होगा कि वह शिक्षा को केवल पहचान की राजनीति तक सीमित न रखे, बल्कि ज्ञान की आलोचनात्मक संरचना में हिस्सेदारी सुनिश्चित करे। आम्बेडकर का विचार भी यही था – शिक्षा का उपयोग मुक्ति के लिए, परंतु वह शिक्षा आलोचनात्मक होनी चाहिए, केवल प्रशस्तिपरक नहीं।

तथ्य और प्रतीकों का राजनीतिकरण

कार्टून को 'कथ्य' से 'आरोप' में बदलने की प्रक्रिया

2012 के कार्टून विवाद ने यह दिखा दिया कि कैसे एक शैक्षणिक 'कथ्य' (academic narrative) को 'राजनीतिक आरोप' में बदला जा सकता है। एक ऐसा कार्टून जो पाठ्यपुस्तक में आलोचनात्मक सोच को प्रेरित करने के उद्देश्य से सम्मिलित किया गया था, उसे

अचानक यह कहकर प्रस्तुत किया गया कि यह आम्बेडकर का अपमान है। जबकि कार्टून का निहितार्थ संविधान निर्माण की जटिलताओं और विचारधारात्मक बहसों को उजागर करना था, न कि किसी व्यक्ति का उपहास।

इस प्रक्रिया में:

- कार्टून को उसके संदर्भ (context) से अलग किया गया;
- उसे एक स्वतंत्र दृश्य के रूप में प्रस्तुत किया गया;
- उसकी रूपकात्मक व्याख्या को छोड़कर एक सतही और शाब्दिक अर्थ में देखा गया;
- और अंततः भावनात्मक प्रतिक्रियाओं को भड़का कर इसे राजनीतिक हथियार में बदल दिया गया।

यह एक खतरनाक प्रवृत्ति है जहाँ शिक्षा में प्रयुक्त किसी भी दृश्यात्मक उपकरण को राजनीतिक लाभ के लिए तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है।

विचारों की बजाय छवियों पर आघात

भारतीय सार्वजनिक विमर्श में यह प्रवृत्ति लगातार बढ़ रही है कि बहस विचारों (ideas) पर नहीं, बल्कि प्रतीकों (symbols) और छवियों (images) पर होती है। एक छवि – चाहे वह कार्टून हो, मूर्ति हो, पोस्टर हो या किताब का कवर – जब किसी समूह की अस्मिता के साथ जुड़ जाती है, तो वह बहस का केंद्र बन जाती है।

कार्टून विवाद में भी यही हुआ। आम्बेडकर और नेहरू के बीच हुए ऐतिहासिक मतभेदों, संविधान निर्माण की प्रक्रिया, और उसमें शामिल जटिलताओं पर चर्चा नहीं हुई। बहस केवल उस एक कार्टून तक सीमित रह गई। जबकि वही पाठ्यपुस्तक आम्बेडकर के योगदान को समग्रता में प्रस्तुत कर रही थी, लेकिन उसकी कोई चर्चा नहीं हुई। केवल छवि को उठाया गया और उसे भावनात्मक रूप से भुनाया गया।

यह दृश्यात्मक संवेदनशीलता जब तर्क को दबा देती है, तो लोकतंत्र में विचारों की जगह केवल दृश्य प्रभाव और भावनात्मक प्रतिक्रियाएं ले लेती हैं। इससे न केवल शैक्षणिक गुणवत्ता प्रभावित होती है, बल्कि समाज में संवाद की संभावनाएँ भी सीमित होती हैं।

संसद में विचार की बजाय विधायी प्रतिक्रिया

लोकतंत्र में संसद को तर्क, विचार और बहस का मंच माना जाता है। लेकिन 2012 के कार्टून विवाद में संसद में जो कुछ हुआ वह विधायी प्रक्रिया की जगह भावनात्मक प्रतिक्रिया का उदाहरण था। बिना किसी तथ्यात्मक जाँच के, संसद में शोरगुल हुआ, कार्टून को हटाने की माँग उठी, मंत्री ने माफ़ी माँगी और कार्टून हट गया।

यह लोकतंत्र के लिए एक गंभीर संकेत था कि शैक्षणिक या वैचारिक विषयों पर निर्णय विचार के आधार पर नहीं बल्कि बहुमत के शोर के आधार पर लिए जाने लगे हैं। यह न केवल संसद की गरिमा को प्रभावित करता है, बल्कि शिक्षा जैसे संवेदनशील क्षेत्र को भी राजनीतिक रणनीति का शिकार बना देता है।

यदि यह प्रथा बनी रही, तो भविष्य में कोई भी सामग्री – चाहे वह कितनी भी साक्ष्य-आधारित और विचारोत्तेजक क्यों न हो – केवल इसलिए हटाई जा सकती है क्योंकि किसी प्रभावशाली समूह को वह अप्रिय लगी। यह स्थिति शैक्षणिक और बौद्धिक स्वतंत्रता के लिए अत्यंत खतरनाक है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में आलोचना का स्थान

पाठ्यक्रम और विचारधारात्मक बहुलता

2012 के विवाद के बाद, भारतीय शिक्षा व्यवस्था में विचारधारात्मक बहुलता (ideological pluralism) के स्थान पर संकुचित दृष्टिकोण के चिन्ह अधिक स्पष्ट हो गए। 2014 के बाद सत्ता परिवर्तन के साथ ही यह प्रवृत्ति और गहन हो गई। कई राज्यों में एनसीईआरटी की पुस्तकों की समीक्षा के नाम पर व्यापक संशोधन हुए, जिनमें संवेदनशील और आलोचनात्मक मुद्दों को हटाने का प्रयास दिखा।

2020 की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति (NEP 2020) के कार्यान्वयन के साथ ही शिक्षा में राष्ट्रवादी स्वर प्रमुख हुआ। कोविड-19 के समय "पाठ्यक्रम भार कम करने" के बहाने से कई पाठ हटाए गए – इनमें वे विषय प्रमुख थे जो सत्ता की विचारधारा के साथ टकराते थे, जैसे – गुजरात दंगे, आपातकाल, आरएसएस पर प्रतिबंध, सांप्रदायिकता, और धार्मिक विविधता। इस छंटनी ने बहुलतावादी पाठ्यक्रम की आत्मा को आघात पहुँचाया।

यह बताता है कि चाहे किसी भी विचारधारा की सरकार हो, जब वह शिक्षा पर नियंत्रण प्राप्त कर लेती है, तब पाठ्यक्रम से वे पहलू पहले हटाए जाते हैं जो असहज प्रश्न खड़े कर सकते हैं। ऐसे में विद्यार्थियों के लिए विचारों की विविधता सुलभ नहीं रह जाती, और वह एकपक्षीय आख्यानों (narratives) को ही सच मानने लगते हैं।

आलोचना से डरने की प्रवृत्ति

कार्टून विवाद और उसके बाद की घटनाओं से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा तंत्र अब आलोचना से डरने लगा है। यह डर चार स्तरों पर दिखता है:

1. **राजनीतिक वर्ग** – जो अपने नायकों या विचारधारा की आलोचना को असहिष्णुता से देखता है;
2. **शैक्षणिक संस्थान** – जो राजनीतिक दबाव से बचने के लिए आत्म-सेंसरशिप अपनाते हैं;
3. **शिक्षक** – जो संवेदनशील विषयों पर चर्चा से बचते हैं;
4. **विद्यार्थी** – जो यह सीखते हैं कि सवाल पूछना या वैकल्पिक राय रखना जोखिम भरा हो सकता है।

यह डर लोकतांत्रिक शिक्षा की बुनियाद को कमजोर करता है। एक ऐसी शिक्षा प्रणाली जो विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने, बहस करने और सोचने से हतोत्साहित करे, वह अंततः अधिनायकवादी व्यवस्था का आधार बनती है।

ज्ञान-विन्यास में राजनीतिक नियंत्रण

ज्ञान-विन्यास (knowledge formation) की प्रक्रिया पर राजनीतिक हस्तक्षेप बढ़ता जा रहा है। अब पाठ्यपुस्तकों में क्या लिखा जाएगा, यह शैक्षिक तर्क नहीं, बल्कि राजनीतिक प्राथमिकताएँ तय करने लगी हैं। यह केवल एनसीईआरटी ही नहीं, बल्कि राज्य बोर्डों, विश्वविद्यालयों और अन्य शैक्षिक निकायों में भी देखा गया है।

विशेषज्ञों की राय की जगह, नौकरशाही और राजनीतिक समीकरण प्राथमिकता लेने लगे हैं। इससे शैक्षिक संस्थानों की स्वायत्तता प्रभावित होती है और ज्ञान का स्वरूप एकपक्षीय, असंतुलित और प्रचारात्मक हो जाता है।

यदि यह प्रवृत्ति जारी रही, तो भविष्य में छात्र न केवल अधूरी जानकारी पाएंगे, बल्कि वैकल्पिक दृष्टिकोणों से वंचित रहेंगे। यह भारत जैसे लोकतंत्र के लिए एक बौद्धिक संकट होगा।

निष्कर्षतः, आलोचना का स्थान वर्तमान शिक्षा प्रणाली में धीरे-धीरे संकुचित होता जा रहा है। इसके लिए ज़िम्मेदार केवल सरकार नहीं, बल्कि वह सामाजिक-राजनीतिक मानसिकता भी है जो असहमति को खतरा मानती है और विचारों के टकराव से कतराती है। यदि हमें लोकतांत्रिक नागरिकों की नई पीढ़ी तैयार करनी है, तो शिक्षा को आलोचना और बहस के लिए खुला रखना ही होगा।

निष्कर्ष और सिफारिशें

शिक्षा में बहुलता की रक्षा की आवश्यकता

2012 का कार्टून विवाद केवल एक चित्र को लेकर उठा भावनात्मक विवाद नहीं था, बल्कि यह भारतीय शिक्षा व्यवस्था की बहुलता, आलोचना और लोकतंत्र के साथ संबंधों की परीक्षा थी। इससे यह स्पष्ट हुआ कि जैसे ही शिक्षा व्यवस्था में विचारों की विविधता को स्थान मिलता है, सत्ता की संवेदनशीलता और असहिष्णुता बढ़ जाती है।

इसलिए:

- **बहुलतावादी पाठ्यक्रम** का निर्माण और रक्षा अनिवार्य है।
- शिक्षाविदों को ऐसी सामग्री प्रस्तुत करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए जो सत्ता की आलोचना कर सके, बशर्ते वह साक्ष्य आधारित हो।
- छात्रों को विविध विचारों से परिचित कराने का अवसर मिलना चाहिए, ताकि वे स्वतंत्र और विवेकशील नागरिक बन सकें।

लोकतांत्रिक विमर्श को पुनर्जीवित करने की मांग

शिक्षा को केवल सूचना देने का माध्यम नहीं बल्कि लोकतांत्रिक विमर्श का आधार बनाना होगा। 2012 के कार्टून विवाद ने यह दिखाया कि जब लोकतंत्र के स्तंभ—संसद, मीडिया और शिक्षा—संवाद की जगह भावनात्मक प्रतिक्रिया को चुनते हैं, तो पूरे तंत्र की विश्वसनीयता संकट में आ जाती है। इसलिए आवश्यक है कि:

- **शैक्षणिक संस्थान सार्वजनिक बहस के केंद्र** बनें, न कि राजनीतिक नियंत्रण के उपकरण।
- संसद और नीतिनिर्माताओं को शिक्षा के क्षेत्र में हस्तक्षेप से बचते हुए विशेषज्ञों की भूमिका का सम्मान करना चाहिए।
- मीडिया को जिम्मेदारी से विमर्श प्रस्तुत करना चाहिए, न कि सनसनी फैलानी चाहिए।

नीतिगत सिफारिशें

इस शोध-लेख के विश्लेषण के आधार पर निम्नलिखित नीतिगत सिफारिशें प्रस्तुत की जाती हैं:

1. **स्वतंत्र शैक्षिक समीक्षकों की समिति** बनाई जाए जो विवादास्पद विषयों पर वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन करे।
2. **NCERT एवं अन्य संस्थाओं में समावेशी प्रतिनिधित्व** सुनिश्चित किया जाए – विशेषकर दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक और महिला शिक्षाविदों की भागीदारी।
3. **संवेदनशील विषयों पर पाठ्यपुस्तकों में स्पष्ट संदर्भ और व्याख्या** दी जाए, ताकि शाब्दिक या दृश्यात्मक सामग्री का गलत अर्थ न निकाला जाए।
4. **शिक्षकों को प्रशिक्षण** दिया जाए कि वे विवादास्पद विषयों को कैसे संवेदनशीलता और विवेक से पढ़ाएँ।
5. **पाठ्यक्रम परिवर्तन की प्रक्रिया पारदर्शी** हो – हर बदलाव का कारण और तर्क सार्वजनिक किया जाए।
6. **अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का स्पष्ट संवैधानिक समर्थन** शैक्षिक दस्तावेजों में दर्शाया जाए।

निष्कर्ष वाक्य

यदि हम चाहते हैं कि आने वाली पीढ़ी केवल तकनीकी रूप से दक्ष नहीं, बल्कि सामाजिक रूप से जिम्मेदार और लोकतांत्रिक चेतना से संपन्न हो, तो शिक्षा में आलोचना, बहस और असहमति को स्थान देना ही होगा। कार्टून विवाद ने जो प्रश्न उठाए, वे आज और अधिक प्रासंगिक हैं – क्या शिक्षा एक संवाद है या निर्देश? क्या छात्र नागरिक हैं या केवल उपभोक्ता?

शिक्षा को लोकतंत्र का आधार बनाना है तो आलोचना से नहीं, भय और निषेध से डरना छोड़ना होगा। तभी बच्चों के भीतर वह चेतना विकसित होगी जो उन्हें कल के सशक्त नागरिक बनाएगी – नागरिक जो सत्ता से सवाल कर सकें, निर्णयों की समीक्षा कर सकें और अपने विचारों के लिए खड़े हो सकें।

Direct and Indirect Reference List

- Yadav, Y. (2012). "This cartoon is one of the most innocuous among all those used." *Indian Express.*
- Mishra, V. (2012). "Students began questioning the delay in Constitution-making – as if that was wrong!" *Indian Express.*
- Chopra, R. (2012). "If authors start fearing backlash, education will serve only conformist ideas." *India Today.*
- Indian Express Editorial. (2012). "The idea of expression within a textbook must be protected."
- PTI. (2019). Documented the historical misrepresentation of Ambedkar in cartoons. *The Tribune.*
- New Indian Express. (2023). Highlighted concerns over deletion of key political and historical topics from NCERT books.
- Lok Sabha Debates. (2012). Parliamentary records reflecting emotional outburst rather than substantive deliberation.
- Times of India. (2012). Reported Palshikar's stance that Ambedkar would have understood the humour.
- NDTV. (2012). Covered the vandalism at Prof. Palshikar's office and political pressure.